© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN : 2395-6011 | Online ISSN : 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

दलित जीवन : एक अध्ययन

नागदेव यादव
ग्राम–गहोरा, पोस्ट–बभण्डी,
थाना–पीपरा, जिला–पलामू (झारखण्ड)

दलित साहित्य के आन्दोलन का उद्‌भव कुछ लोग बुद्ध काल में खोजते है कुछ संतवाङ्‌मय में (मध्यकालीन भक्ति साहित्य में) तो कुछ क्रान्तिवीर महात्मा फुले के विचार और साहित्य में। इस बात को नजर अदांज नहीं किया जा सकता कि इन सभी ने विषम समाज व्यवस्था का विरोध किया है दलितों पर होने वाले अन्याय, अत्याचारों का अपनी लेखनी से वाणी दी है, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का संदेश महात्मा बुद्ध और महात्मा फुले के विचारों में हम पाते है। परन्तु दलित साहित्य का प्रेरणस्रोत डॉ0 अंबेदकर के विचार और उनकी जीवन दृष्टि में हैं और दलित मुक्ति के उद्‌देश्य से शुरू किये गये मुक्ति आन्दोलन में है। उनकी इस विचारधारा और जीवन दृष्टि पर महात्मा बुद्ध और महात्मा फुले के विचारों का गहरा प्रभाव है जिसे उन्होंने विरासत के रूप में ग्रहण किया।

अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी शिक्षा के कारण नई चेतना के निर्माण से हिन्दू धर्म पर आधारित चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था पर पुनर्विचार होने लगा। 'प्रभाकर' नाम की पत्रिका में यह प्रश्न उठाया गया कि ''अगर'' अंग्रेज अस्पृश्यों को अपने घर में नौकर रख सकते हैं और छुआछूत न मानकर वे उन्हें स्पर्श करते है, तो सवर्ण हिन्दुओं को ही अस्पृश्यों से नफरत क्यों है जबकि वे अंग्रेजों तक का आदर सम्मान करते हैं''।[1] अस्पृस्यता निवारण और बहुजन समाज के हित के लिये संपूर्ण जीवन भर कार्य करने वाले महात्मा ज्योतिबा फुले इस सामाजिक आंदोलन के नेता थे। उन्होंने सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष करने हेतु 'सत्यशोधक आन्दोलन का नेतृत्व किया। जातिभेद और धर्मभेद की आलोचना करते हुए उन्होंने मानव समानता का प्रचार किया। उनके यही कार्य और विचार डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के प्रेरणस्रोत बने। उन्होंने कबीर, बुद्ध और महात्मा फुले को अपना गुरू माना है। 'महात्मा फुले एक संघर्षशील नेता और चातुर्वर्ण्य तथा जातिभेद पर कठोर प्रहार करके मानवीय समानता की घोषणा करने वाले प्रथम लोक नेता थे।[2] डॉ0 अंबेडकर ने बुद्ध धर्म को स्वीकार करके बुद्ध धर्म के मूल तीन तत्व स्वतंत्रता, समानता और न्याय प्राप्ति को संघर्ष का मुद्‌दा बनाते हुए दलित मुक्ति आंदोलन को सक्रिय बनाया।

भारतीय समाज में विषमता और विभाजन का जो विष हजारों वर्ष पूर्व बोया गया था अब वह फल फूलकर इतना व्यापक हो गया है कि उसे सहसा उखाड़कर फेंका नहीं जा सकता। उसके असर को धीरे–धीरे ही समाप्त किया जा सकता है और यह काम साहित्य ही कर सकता है। तेरहवीं सदी में सन्त वाङ्‌मय के द्वारा उभरा हुआ आक्रोश और वेदना का स्वर ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था के दबाव में दब गया था। परन्तु दलित साहित्य आन्दोलन उभरने वाला विद्रोही स्वर किसी भी शोषक शक्ति के सामने झुकने वाला और दबने वाला स्वर नहीं था। ''दलित साहित्य ऐसे अनोखे अनुभव विश्व की रचनात्मक अभिव्यक्ति है जिसे मजबूरन अछूतों ने सदियों तक भोगा है''।[3] दलित मुक्ति आंदोलन की शुरुआत को डॉ0 बाबासाहेब अंबेडकर द्वारा 24 दिसम्बर 1927 को मनुस्मृति दहन के द्वारा मनुनिर्मित हिन्दू धर्म की विषम समाज रचना और मूलभूत ब्राह्मण वादी विचार धारा के प्रति विरोध प्रकट किया था।

उन्होंने महाड़ के चवदार तालाब के सत्याग्रह द्वारा छुआछूत और अस्पृश्यता के विरूद्ध संघर्ष किया और मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिये दलित समाज को जागृत किया। मानव अधिकारों की प्राप्ति के इस तरह के क्रान्तिकारी कदम का सवर्ण वर्ग की ओर से जोरदार विरोध किया गया। सन् 1930 में लंदन में हुई पहली भारतीय गोलमेज सम्मेलन में डॉ0 बाबासाहेब भारतीय दलितों के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। इसमें उन्होंने दलितों के अधिकारों की और साथ ही पृथक् निर्वाचन की भी माँग की थी। जिसे ब्रिटिश सरकार ने मान्यता दी परन्तु महात्मा गांधी ने स्वतंत्र पृथक् निर्वाचन की माँग के विरूद्ध आरमण अनशन किया। गाँधी जी की जिद और उनकी बिगड़ती दशा को देखकर डॉ0 अंबेडकर को इस राजनीति अधिकारों को छोड़ना पड़ गया था। डॉ0 अंबेडकर की मृत्यु के बाद दलित मुक्ति आन्दोलन की बागडोर शिक्षित दलित युवकों ने संभाली । सन्1966 में सिद्धार्थ साहित्य संघ नामक साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई जो बाद में बदलकर महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ हो गया। महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ ने दलित लेखकों का प्रथम सम्मेलन 2 मार्च 1958 को मोरबाग दादर, बंबई में बंगाली हाईस्कूल के हॉल में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के अवसर पर 'प्रबुद्ध' भारत का विशेषांक निकला जिसके संपादकीय लेख में दलित साहित्य की व्याख्या इस प्रकार की गई। ''इस विषम समाज व्यवस्था के विरूद्ध दलित समाज का संघर्ष निरंतर चलता रहेगा और इस संघर्ष का इतिहास ही दलित साहित्य होगा''।[4] इस सम्मेलन में यह माँग की गई थी कि ''दलित साहित्य को मराठी भाषा तथा साहित्य में, साहित्य के एक प्रभाग के रूप में सम्मिलित किया जाय। इस साहित्य के सांस्कृतिक महत्व को समझकर साहित्य संघ और विश्वविद्यालयों द्वारा उचित सम्मान दिया जाय।[5]

डॉ0 बाबासाहेब अंबेडकर की मृत्यु के बाद रिपब्लिकन पार्टी में फूट पड़गई और वह दो हिस्सो में विभाजित हो गई। इन दोनों साहित्यिक संस्थाओं का दलित साहित्य आंदोलन को आगे ले जाने में बड़ा योगदान रहा है। शिक्षित सुसंस्कृत दलित युवकों के मन में अपने जीवन के अनुभवों को शब्दांकित करने की इच्छा जाग उठी थी। परिणामतः कहानी, कविताएँ लिखी जा रहीं थी। ''पत्थर को तोड़कर पानी का स्रोत मैदान की ओर बहने के लिये जिस प्रकार व्याकुल रहता है, उसी प्रकार की व्याकुलता रचनाकार में भी होती है।[6] दलित साहित्य आन्दोलन को आगे बढ़ाने में दलित पैंथर संगठन का भी प्रमुख हाथ रहा है। यह संगठन दलित मुक्ति संग्राम काा जुझारू दस्ता है, जसकी प्रमुख भूमिका राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में देखी जा सकती है।

इस प्रकार दलितों में विद्रोह की अभिव्यक्ति और क्रान्ति के जोश का अहसास साहित्य के माध्यम से ही विकसित हुआ है और अब वह वर्ण व्यवस्था और उसकी मानसिकता को ध्वस्त कर देना चाहता है। दलित इस विश्व और जीवन को नये रूप में ढ़ालना चाहता है जिसके हाथों को इस युग ने प्रज्ञावन्त प्रलयकारी बनाने के लिये शास्त्रों तथा शस्त्रों को उपलब्ध करा दिया है।

संदर्भ–

1.नई कहानी, इग्नू (एम0ए0) पृष्ठ 78
2.दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ0 एन0सिंह पृष्ठ 296
3.दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह पृष्ठ 70
4.दलित साहित्य एक मूल्यांकन, प्रो0 चमनलाल पृष्ठ 23
5 दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र ,शरण कुमार लिंबाले पृष्ठ 12
6 नई कहानी, इग्नू (एम0 ए0) पृष्ठ 83